खण्ड – 'अ'

– कला परिचय एवं विकास क्रम

– चित्र के तत्त्व

– संयोजन के सिद्धान्त

– चित्र के माध्यम एवं तकनीक

अध्याय–1

कला परिचय एवं विकास क्रम

कला की परिभाषा

कला कल्याण की जननी है। प्रथम कलाकार सृष्टि का रचियिता ईश्वर है। यही कारण है कि सृष्टि के सभी पदार्थों में कला का वास है। कला शब्द की उत्पति संस्कृत भाषा की 'कल्' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है शब्द करना या प्रेरित करना। जिस प्रकार कल् कल् शब्द से एक गतिपूर्ण ध्वनि आती है उसी प्रकार कला भी लयपूर्ण अभिव्यक्ति है। कला का अर्थ मात्र भोग–विलास न होकर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख या आनन्द प्रदान करना है। भारतीय विद्वानों ने कला को अनेक रूपों में परिभाषित किया है। भारत में 'कला' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। जिसमें भृगु ऋषि के वंशजों को लकड़ी के कार्य में विशेषज्ञ बताया है तथा रात्रि व ऊषा दो देवियों के चित्रण का भी उल्लेख है। ब्रह्मसूत्र में कहा गया है कि ''जो आन्तरिक भावों को कलात्मक रूप से अभिव्यंजित करे वही कला है।'' भरत मुनि ने कला की यथार्थवादी परिभाषा दी '' कला न ज्ञान है , न शिल्प और न ही विद्या , अपितु कला इन सबसे भिन्न है।'' डॉ.भोलानाथ तिवाड़ी के मतानुसार ''शारीरिक या मानसिक कौशल जिसका प्रयोग किसी कृत्रिम निर्माण में किया जाए वही कला है।''

पाश्चात्य विद्वानों ने भी कला को अनेक रूपों में परिभाषित किया है। प्लेटो के अनुसार ''कला सत्य की अनुकृति है। कला में हम ईश्वर द्वारा निर्मित सृष्टि को ही सत्यापित करते हैं।'' अरस्तु का मत है कि '' कला में सामान्य की अनुकृति की जाती है क्योंकि विशिष्ट की अनुकृति उचित तथा सम्भव नहीं है।'' प्लोटिनस ने ''कला जीवन की आधारशिला है , सम्पूर्ण जीवन में अनुभवों की समस्त अभिव्यक्ति है, व्यक्ति और समाज की चेतना की एक महत्वपूर्ण क्रिया है।'' हबर्ट रीड ने "कला को क्रीड़ा" माना।

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि कला एक सहज क्रिया है जिसमें अपने मनोभावों को दृश्यमान जगत के रूपाकारों की सहायता से विविध माध्यमों व तकनीकों द्वारा सुन्दर तरीके से अभिव्यक्ति दी जाती है जो कलाकार व दर्शक दोनों को आनन्द देती है। पश्चिम में कला का समानार्थी शब्द 'आर्ट' है। जो लैटिन भाषा के आर्स शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ समान है। कला शब्द अत्यन्त व्यापक है। कला रूप का सृजन करती है। अरूप को रूप देती है। अव्यक्त को व्यक्त करती है। कला को जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता। कला मनोविनोद का साधन होने के साथ ही जीवन में नवीन चेतना , शक्ति , स्फूर्ति , नवीन आयामों और सुखों का संचार करती है। कला व्यापक है। केवल चित्रकला,

मूर्तिकला व संगीतकला ही कला की श्रेणी में नहीं आते। स्वर , शब्द , रंग , रेखा , आकार , आयाम, साज–सज्जा , केश–विन्यास , जीवन शैली , साज श्रृंगार , वार्तालाप शैली , स्थापत्य कला , काव्यकला आदि सभी कला को अभिव्यंजित करते हैं। अन्तर केवल अभिव्यक्ति के माध्यम का है।

षिल्प और कला के प्राचीन ग्रन्थ :–

संस्कृत साहित्य में कला सम्बन्धी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। कुछ विविध विषयों के ग्रन्थों में भारतीय चित्रलेखन की प्राचीन परम्परा का उल्लेख है जिससे जनसाधारण में कला की लोकप्रियता का पता लगता है। दूसरे प्रकार के ग्रन्थों में स्वतंत्र व व्यापक रूप से कला के विधि–विधानों की व्याख्या की गयी है। ऐसे लक्षण ग्रन्थ कम है। तीसरे प्रकार के ग्रन्थों में चित्रकला विषयक एक अलग अध्याय मिलता है। इन ग्रन्थों की संख्या अधिक है। जिन ग्रन्थों में कला पर विशेष रूप से विचार किया है तथा जिनको पढ़कर भारतीय कला की प्राचीन समृद्ध परम्परा का ज्ञान होता है उनमें विश्वकर्म प्रकाश ; मयमत ;मानसार ; चित्रसूत्र ; चित्रलक्षण ; चित्रकर्म शिल्पशास्त्र ; शिल्पकलासूत्रधार ; कला विलास ; मानसोल्लास तथा शिल्पकला दीपिका प्रमुख है। इनमें भी चित्रसूत्र ; चित्रलक्षण ; समरांगणसूत्र तथा मानसोल्लास महत्वपूर्ण हैं।

चित्रसूत्र :– यह विष्णुधर्मोत्तर पुराण का तीसरा खण्ड है। जिसके नौ अध्यायों में चित्रकर्म के सम्बन्ध में व्यापक वर्णन है। इस ग्रन्थ में कला की उत्पति के बारे में बताया है कि पुराकाल में नारायण मुनि ने पास आई सुर–सुन्दरियों के अभिमान को खत्म करने के लिये अति सुगन्धित आम के रस से एक रूपवती नारी का चित्र बनाया , जिसे देखकर सभी सुर–सुन्दरियाँ लज्जित होकर लौट गयी। इस चित्र में नारायण ने जीवन डाल दिया जो उर्वशी अप्सरा के नाम से जानी गयी। तभी चित्रशास्त्र के लक्षणों से सम्पन्न चित्रसूत्र की रचना हुई। इसमें आयामवर्णन , प्रमाणवर्णन , सामान्यमानवर्णन , प्रतिमालक्षणवर्णन , क्षयवृद्धि , रंगव्यतिकर , वर्तना , रूपनिर्माण व श्रृंगारादि भाव कथन नौ अध्यायों में कला लक्षण वर्णित हैं।

चित्रलक्षण :– नग्नजित् द्वारा रचित चित्रलक्षण में विश्वकर्मा व नग्नजित् द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में भी चित्रकला की उत्पति का वर्णन है कि पुराकाल में भयजित् नामक राजा ने मृत ब्राह्मणपुत्र का चित्र बनाया जिसमें स्वयं ब्रह्मा ने प्राण संचार किया। भयजित् द्वारा पराजित यमराज ने ब्राह्मण पुत्र में प्राण संचार से मना कर दिया था। ब्रह्मा ने भयजित् को 'नग्न प्रेतों' तथा सृष्टि का पहला चित्र बनाने के कारण प्रथम कलाचार्य की उपाधि दी। चित्रलक्षण के तीन अध्याय ही प्राप्त हैं जिनमें चित्रकला के नियमों पर गंभीर विचार किया गया है।

समरांगणसूत्रधार :– राजा भोज द्वारा रचित समरांगणसूत्र में 84 अध्याय हैं जिनको सात भागों में बांटा है। सातवें भाग 'चित्रकर्म' में छः अध्याय – चित्रोद्धेश्य , भूमिबंधन , लेप्यकर्मादि , अण्डक प्रमाण, मनोत्पत्रि और रसदृष्टिलक्षण हैं जिनमें चित्रकला के लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में सर्वथा अपूर्व सामग्री

मिलती है।

मानसोल्लास :— सोमेश्वर द्वारा रचित मानसोल्लास के तीसरे भाग के प्रथम अध्याय में चित्रकला पर क्रमबद्ध तरीके से विचार किया गया है। चित्रकारस्वरूप , चित्राभित्ति , लेखनीलेखन , शुद्धवर्ण , मिश्रवर्ण, चित्रवर्ण , पक्षसूत्रलक्षण , माललक्षण , तिर्यकमान लक्षण तथा सामान्य चित्र प्रक्रिया आदि ग्यारह अध्यायों में चित्रकर्म का वर्णन है।

साहित्य में चित्रकला :— भारत के प्राचीन समाज व साहित्य में ललितकलाओं का उल्लेख वैदिक साहित्य , उपनिषद् , रामायण , महाभारत , जैन , बौद्ध साहित्य , पुराणों , नाट्यशास्त्र , कामसूत्र आदि अनेक ग्रन्थों में मिलता है।

वैदिक साहित्य :— वेद सर्वाधिक प्राचीन कृति है। वेदों में भी कला सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। वैदिक काल में नृत्य , गीत , वाद्य , काव्य , नाटक , कहानी , कला कौशल आदि मनोरंजन के अनेक साधन विद्यमान थे। ऋग्वेद में चर्म पर अग्निदेव का चित्रण , द्वारदेवियों की आकृतियों , रात्रि व ऊषा की नारी आकृतियों के प्रतीक चित्रों का उल्लेख मिलता है। सामवेद गेयात्मक वेद है जिसमें संगीत कला का प्रयोग है। उपवेदों में भी यथा आयुर्वेद , धनुर्वेद , गन्धर्ववेद , स्थापत्यवेद , नाट्यवेद आदि क्रमशः औषध कला ,युद्धकला , संगीत कला , वास्तुकला , नाट्यकला को आधार मान कर व्याख्या की गयी है। वैदिक साहित्य में कला व कौशल का सम्पूर्ण विवेचन मिलता है। प्रतिमा विज्ञान , वास्तु विज्ञान , चित्रकर्म , संगीत ,नृत्य आदि कलाओं का मूल वेदों में ही है।

वैदेत्तर साहित्य :— वेदों व उपवेदों के पश्चात् ब्राह्मण , आरण्यक , उपनिषद् , वेदांग, सूत्र आदि वैदेत्तर वैदिक साहित्य में भी कला पर स्पष्ट उल्लेख मिलता है। त्रैतीय ब्राह्मण में संगीत ; षडविंश ब्राह्मण में प्रतिमा ; ताण्डव ब्राह्मण ,ऐतरेय ब्राह्मण व शतपथ ब्राह्मण में स्वर्ण प्रतिमा का संकेत मिलता है। बृहदारण्यक में कहा गया कि ''अमूर्त ब्रह्म के मूर्त रूप की अनुभूति ही सृष्टि है। यही कलाकृति है।'' छन्दोपग्य उपनिषद् में रंग व रूप की चित्र में महत्ता बताई है। 'पंचदशी' वेदान्त दर्शन के चित्रदीप प्रकरण में चित्रशास्त्र के विधानों का वर्णन है।

स्मार्त साहित्य :— वैदेत्तर साहित्य के पश्चात् स्मार्त साहित्य का विशेष महत्व है। मनु स्मृति में चित्रकर्म के लिए विशेष निर्देश दिये हैं।

महाकाव्य :— भारतीय साहित्य में रामायण व महाभारत साहित्य की उन्नत परम्परा के द्योतक हैं। ये दोनो महाग्रन्थ इतिहास , पुराण , काव्य , महाकाव्य सब कुछ हैं। ये अनेक काव्यों , महाकाव्यों व नाटकों के जन्मदाता भी हैं। रामायण में रथों की साज—सज्जा , अलंकरणों से सज्जित पुष्पक विमान, सीता की स्वर्ण प्रतिमा, नृत्य—संगीत आदि मनोरंजन के साधनों का विस्तृत वर्णन है। महाभारत में भी लाक्षागृह , युधिष्ठिर की अलंकृत सभा जिसमें भ्रमित करते द्वार , जलाशय , शिलापद , तोरण और मानवाकृतियों के प्रतिमानों

का चित्रण व अंकन हुआ आदि का वर्णन मिलता है। किन्तु प्रत्यक्ष अनुमान लगाने के लिए अवशेष या साधन उपलब्ध नहीं है।

<u>अष्टाध्यायी</u> :– पाणिनी की रचना अष्टाध्यायी में पशु–पक्षी , प्रकृति आदि को किस विधि से चित्रित किया जाता है का उल्लेख मिलता है। शिल्प को चारू (ललित) तथा कारू (उद्योग) दोनों अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।

<u>कामषास्त्र व नाट्यषास्त्र</u> :– शास्त्र साहित्य की परम्परा में वात्स्यायन के कामशास्त्र अथवा कामसूत्र में चौसठ कलाओं और चित्रकला के षडांगों पर उल्लेख है। इसमें उल्लेखित षडांग ''रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्। सादृष्यं वर्णिकाभंग इति चित्रं षडङ्कम्।।'' भारतीय शिल्प के छः अंग हैं जिनके आधार पर भारतीय कला रूपायित हुई है। भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र में भी कलाओं पर व्यापक विचार हुआ है। इसमें वर्ण योजना , नाट्यशाला में नर–नारी प्रतिमाओं , अलंकरणों तथा विविध दृश्यों के पटों को चित्रित करने के तरीके बताये हैं।

<u>पुराण</u> :– पुराणों में भी कला सम्बन्धी वर्णन मिलता है। स्कन्ध पुराण , गरूड़ पुराण , अग्निपुराण आदि में अनेक अध्यायों में स्थापत्य , मूर्ति , विवाह मण्डप , रथ आदि के निर्माण व चित्रकर्म पर वर्णन हैं। सर्वोपरि विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र में तो नौ अध्याय कला पर ही हैं।

<u>जैन व बौद्ध ग्रन्थ</u> :– जैन व बौद्ध ग्रन्थों में अनेक प्रसंगों से कला के प्रति तत्कालीन समाज के सम्मान का पता लगता है। प्रश्नव्याकरणसूत्र , कल्पसूत्र , सुरसुन्दरीकला आदि जैन ग्रन्थों तथा विनयपिटक , ललितविस्तार , थेरगाथा , जातक कथाओं आदि बौद्ध ग्रन्थों में चित्रकला , मूर्तिकला व वास्तु कला पर अत्यन्त उपयोगी चर्चा की गयी है।

<u>नाटक</u> :– संस्कृत में श्रव्य काव्यों के साथ ही दृश्य काव्यों का विकास भी हुआ। नृत्य , अभिनय , गीत , मंच सज्जा की दृष्टि से नाटकों की लोकप्रियता में ललितकलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भास लिखित स्वप्नवासवदत्ता ; कालिदास कृत मालविकाग्निमित्र , अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा विक्रमोर्वशीय ; भवभूति द्वारा रचित मालतीमाधव ; श्रीहर्ष का नैषधचरित आदि नाटकों में संगीत ; चित्रकला , नृत्य कला , विद्धचित्र (आवक्ष चित्र) आदि कलाओं पर प्रकाश डाला गया है। काव्यों का बिम्ब ऐसा दृश्य उत्पन्न करता है मानों चित्र बन गये हों। आज भी इन नाटकों पर चित्रावलियां बनती हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि नाटकों से पूर्व ही ललित कलाएँ प्रचलित थी।

<u>कलाओं की प्राचीनता व वर्गीकरण</u> :– पूर्व विवेचित प्रसंगों से कलाओं की प्राचीनता , स्थिति तथा उपयोगिता का ज्ञान हो जाता है। प्राचीन काल में प्रत्येक विषय में चमत्कारपूर्ण या कुशलता से की गयी अभिव्यक्ति को कला नाम दिया गया। शायद ही ऐसा कोई विषय छूटा हो जिसका समावेश कला के अन्तर्गत नहीं किया गया । यही कारण है कि इस दृष्टि से कला की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन हो

गया। किन्तु यह तय है कि मानव के जन्म से ही कला का भी उद्‌भव हुआ। कला अति प्राचीन है।

विद्वानों ने कला के दो भाग माने हैं। भारत में कला के दो भाग किये गये हैं – चारू (ललित) व कारू (उपयोगी)। चारू कला में उपयोगिता के साथ सौन्दर्य का समावेश भी रहता है। ये कलाएं पाँच मानी गयी – वास्तुकला , मूर्तिकला , चित्रकला , संगीतकला तथा काव्य कला। कारू कलाएं मानव के दैनिक उपयोग की कलाएं हैं जैसे काष्ठ कला , लौहकला , कुम्भकला आदि। पाश्चात्य कला दर्शन में भी कलाओं के दो विभाजन किये गये – उपयोगी कला व ललित कला। उपयोगी कला का सम्बन्ध उपयोगिता व नैतिकता से था जिसमें कौशल महत्वपूर्ण है। ललित कला भावों की अभिव्यक्ति है जिसमें उपयोगिता या नैतिकता आवश्यक नहीं है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में प्रायः 64 कलाएं बताई गयी हैं। कहीं कहीं यह संख्या 72 या 81 भी है। किंतु इस वर्गीकरण व संख्या को निर्धारित करने के मूल में कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

आदिम या प्रागैतिहासिक कला :– मानव जीवन की तरह कला के उदय का इतिहास भी रहस्यमय है। मानव जीवन के विकास के प्रथम चरण में कार्य को सम्पादित करने तथा अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाने के लिए कला का जन्म हुआ। आदिम युग के गुहा व शैल चित्रों से आदिम मानव की कलारूचि का पता चलता है। इन कलाकृतियों को देखकर मानव की आज तक की प्रगति का बोध भी होता है। मानव ने प्रारम्भ में भावाभिव्यक्ति व टोने टोटके के लिए कुछ संकेतों को आधार बना कर चित्रण प्रारम्भ किया जो बाद में प्रतीक रूप में स्थापित हुए। इन प्रतीकों में प्रकृति प्रमुख थी जिस पर जीवन आधारित था। इन प्रतीकों की मानव ने उपासना प्रारम्भ की क्योंकि वह प्रकृति के प्रति समर्पण भाव रखता था। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में आदिम कला के अवशेष मिलते हैं। भारत , स्पेन , फ्रांस , दक्षिण रोडेशिया , पेरू में भी आदिम चित्र मिले हैं। यह प्रस्तर युग कहा गया जो अनेक विकास क्रमों से गुजरा है किन्तु कला की दृष्टि से जब मानव को प्रस्तरों से हथियार व औजार बनाने का ज्ञान हुआ तभी से कला का प्रारम्भ हुआ माना जा सकता है।

लोककला :– लोककला सामान्य लोक मानस से प्रेरणा और संरक्षण पाकर बनी शास्त्रीय परम्पराओं के सम्पूर्ण विश्व में जन साधारण की सहज अभिव्यक्ति के रूप में विकसित हुई है। लोक कला उन कलाकारों के कौशल व भावभिव्यक्ति का परिणाम है जिन्होंने कभी किसी वैज्ञानिक या शास्त्रीय रीति से कला अध्ययन नहीं किया। भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति ही लोककला का मूल मंत्र है। भारतीय लोककला परम्परा द्वार के दोनों ओर आलेखनों से प्रारम्भ हुई। लोक भाषाओं के समान ही लोककलाएं भी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। जीवन का कोई पहलू इससे अछूता नहीं है। लोककला का सम्बन्ध जीवन के संस्कारों से जुड़ा है। व्रत , त्यौहार , उत्सव , घर का आंगन , दीवारें , द्वार ' कपाट , जन्म व मृत्यु संस्कार , जन्मोपरान्त समय–समय पर होने वाले संस्कार आदि प्रत्येक मांगलिक कार्यों का सम्पादन लोक – चित्रों

के बिना नहीं होता। इन चित्रों में देवी – देवताओं , द्वारपाल , सूरज , चाँद , तारे , पशु – पक्षी आदि के साथ कलश , स्वास्तिक , आभूषण , दीपक आदि प्रतीकों का अंकन करना मंगलसूचक माना जाता है। माँडणा , अल्पना , चौक , रंगोली , साँझी आदि विभिन्न क्षेत्रों की लोककला के रूप हैं। इसमें मुलतानी मिट्टी , हिरौंजी , हल्दी , काजल , सिंदूर , खड़िया , गेरू , आटा आदि को रंगों के रूप में प्रयुक्त करते हैं तथा अंगुलियों या कपड़े को लकड़ी पर लपेट कर तूलिका बनाई जाती है। बंगाल की अल्पना , बिहार व उत्तरप्रदेश के चौक , बिहार की मधुबनी कला , राजस्थान व मध्यप्रदेश के माण्डणे आदि प्रचलित लोककला के रूप हैं। लोककला में स्थानीय देवता व वीर पुरूषों की फड़ वाचन परम्परा भी लोककला का अद्‌भुत प्रयोग है। फड़ में देवता या वीर पुरूष के जीवन का सम्पूर्ण वृत्तान्त होता है जिसे वाचक (भोपे) गाकर सुनाते हैं। लोककला की यह परम्परा खिलौनों , तीज , गणगौर , कावड़ , कठपुतलियों , थेवा आदि के कलारूपों में सम्पूर्ण भारत में मिलती है।

भित्ति–चित्र :– भारतीय कला में भित्ति चित्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। भित्ति चित्र तत्कालीन चित्रण परम्पराओं का परिचय देने के साथ ही जीवन शैली व सभ्यता के परिचायक भी हैं। आदिम शैल चित्रों व गुहाचित्रों से लेकर अजन्ता , बाघ , सितनवासल , जोगीमारा , बादामी आदि विश्वविख्यात भित्ति चित्रों की एक विशद श्रृंखला हैं। सभी क्षेत्रों में भित्ति चित्रण परम्परा मिलती है। भित्ति – चित्र दीवारों पर बनाये जाते हैं। जिनकी तीन तकनीक प्रमुख हैं फ्रेस्को बूनो – तैयार की गई गीली भित्ति पर चित्रण , फ्रेस्को सेको – तैयार की गयी सूखी भित्ति पर चित्रण तथा टेम्परा (किसी भी सूखी भित्ति पर चित्रण)

लघु चित्रण :– भित्ति चित्रण परम्परा के बाद लघु चित्रण परम्परा विकसित हुई। इन चित्रों को प्रचार – प्रसार हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाया जा सकता है। आरम्भिक काल में पोथी–चित्रण परम्परा का प्रचलन रहा जिनमें लेखन के साथ चित्रण भी होता था। सचित्र पोथियों का निर्माण मुख्यतः नेपाल , बंगाल व बिहार में हुआ। ये पोथी चित्रण ताड़पत्र या कागज पर अधिक हुआ। जैन व बौद्ध पोथी चित्रण भारतीय कला में ऐतिहासिक महत्व रखते हैं जिनसे स्वतन्त्र लघु चित्रण परम्परा विकसित हुई। स्वतन्त्र लघुचित्रों में राजस्थानी , मुगल , पहाड़ी व दक्षिण चित्र शैलियाँ प्रसिद्ध हैं। इनके विषय धर्म प्रधान अधिक हैं। इनके पश्चात् शासकों से सम्बन्धित विषयों पर भी अगणित लघुचित्र बने। इन लघुचित्रों व पोथी चित्रों में प्राकृतिक व खनिज रंगों का प्रयोग किया गया है।

भारतीय कला परिचयः– किसी भी देश की संस्कृति एवं सभ्यता का मूल्यांकन कला के माध्यम से किया जाता है। कला सौन्दर्य का सृजन करती है। सौन्दर्य के प्रतिमान देश , काल व परिस्थिति के अनुसार बदलते हैं। यही कारण है कि कला का स्वरूप भी देश , काल तथा परिस्थिति के अनुरूप समय – समय पर बदलता है। भारत में भी कला का स्वरूप धार्मिक , सामाजिक एवं राजनैतिक मान्यताओं के आधार पर परिवर्तित होता रहा है। भारतीय कला आदिम काल से अनवरत् विविध शैलियों के रूप

में दृष्टिगत होती है। जोगीमारा , अजन्ता , बाघ , सितनवासल ऐलोरा आदि कला केन्द्र भारतीय कला इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ रहे हैं। मध्यकाल की भारतीय कला लघुचित्रों के रूप में उपलब्ध है। राजस्थानी , पहाड़ी कला का उद्‌भव हुआ। दक्षिण भारत में भी मुगल कला के प्रभाव से स्थानीय कला को नवजीवन मिला। मुगल साम्राज्य के पतन तथा अंग्रेजों के भारत आगमन से भारतीय कला के सहज विकास में एक गतिरोध उत्पन्न हो गया।

आधुनिक कला एवं पृष्ठभूमि – मुगल , यूरोपियन व भारतीय कला के सहयोग से एक नवीन शैली विकसित हुई जिसे ''कम्पनी शैली'' के नाम से जाना गया। राजा रवि वर्मा इस शैली के प्रथम चित्रकार थे। इसी समय चैन्नई , कोलकाता , लाहौर , बम्बई तथा लखनऊ में यूरोपीय कला शैली व तकनीक में भारतीय कलाकारों को प्रशिक्षित करने के लिए कला विद्यालय खोले गये। इससे भारतीय कला उपेक्षित होने लगी व उसके अस्तित्व को आघात पहुँचा।

इस समय कुछ कलाकारों ने भारतीय पारम्परिक मूल्यों को जगाने के लिए प्रयास किया। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में बंगाल से यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जो 'बंगाल स्कूल' के नाम से देशव्यापी स्तर पर विख्यात हुआ। ई.बी.हैवेल , नन्दलाल बोस , असितकुमार हल्दार , क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार , के.वेंकटप्पा , शैलेन्द्रनाथ डे , शारदाचरण उकील , देवीप्रसाद राय चौधरी , नागहट्ट , रवीन्द्रनाथ ठाकुर , गगनेन्द्रनाथ ठाकुर आदि कलाकारों का इस आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसके पश्चात् आधुनिक भारतीय कला परिदृश्य में तीव्रता से परिवर्तन व विकास होने लगा। इसके परिणाम हम भारतीय समसामयिक कला में देख सकते हैं। इसका महत्वपूर्ण पक्ष गतिशीलता है। आज कला में किसी शैली या विचारधारा का प्रभाव नहीं है। निरूपण , सरलीकरण , पोत–सतह –रंग–रेखा – आकार के प्रति संवेदनशीलता , अन्तर्मुखी दृष्टि , कम्प्यूटर का प्रयोग आदि इसमें सहयोगी तत्व हैं। आज कला में बौद्धिक पक्ष महत्वपूर्ण है। आम दर्शक इन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में कोई सक्रिय भागीदारी नहीं रख पाता। फिर भी समसामयिक कला की असाधारण विविधता और नवीन दिशाओं में की जा रही प्रयोगवादिता के कारण चित्रकला, मूर्तिकला व वास्तुकला सहअस्तित्व में हैं।

अभ्यास प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. शिल्प अथवा कला को वैदिक काल में क्या माना जाता है ?
2. कामसूत्र शास्त्र के लेखक कौन हैं ?
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् किस महाकवि की कृति है ?
4. आदिम चित्रकला में मानव ने प्रमुखतः किस विषय के चित्र बनाए ?
5. लोक कला की प्रमुख विशेषता क्या है ?
6. राजस्थान की प्रमुख लोक कला कौन सी शैली है ?
7. लोक देवताओं के जीवन पर आधारित विशाल पट चित्र को क्या कहा जाता है?
8. मौलेला कला किस माध्यम से जानी जाती है ?
9. अजन्ता की गुफाएँ किस चित्र विधा के लिए प्रसिद्ध हैं?
10. अपभ्रंश शैली में मुख्यतया चित्रण किस रूप में हुआ ?
11. लघु चित्रण परम्परा में चित्रकार के नाम चित्रों पर किस शैली में अंकित किए जाते थे।
12. यथार्थवादी चित्रण किस शैली की विशेषता थी ?
13. अमूर्त चित्रण किस कला शैली की पहचान है।
14. भरतमुनि ने किस कला को प्रधान कला के रूप में स्वीकार किया है ?
15. समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कौनसी कला करती है।
16. कला की परिभाषा व उद्देश्य बताइये।
17. आदिम चित्रकला का सामान्य परिचय दीजिए।
18. भारतीय भित्ति चित्रण परम्परा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
19. पोथी–चित्रण का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
20. लघुचित्रण क्या है, संक्षिप्त परिचय दीजिए।
21. भारत में आधुनिक कला की क्या पृष्ठभूमि रही है। स्पष्ट कीजिए।
22. लोक कला पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

निबंधात्मक प्रश्न :

1. कला के प्राचीन स्वरूप का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. लोक कला क्या है? वर्णन कीजिए।